ॐ ज्ञाननाम अग्रगण्याय नमः

षष्ठो अध्यायः

श्रीकृष्ण अर्जुन

'कर्मयोग' और 'सांख्य योग'

अध्याय

दोहा- श्रीमुख बाहित त्रिवेनी, धन्य हुआ त्रैलोक।
गंगासागर सम प्रकट, हुआ ध्यान का योग।।

मात्र अक्रिय या निराग्नि योग संन्यासी नहीं।
हो अनाश्रित कर्म फल कर्मी है संन्यासी वही।। 01

बस इसी संन्यास को सब योग कहते हैं।
आश्रित, संकल्प वश योगी न रहते हैं।। 02

योग, इच्छित जीव को निष्कामता ही हेतु है।
योग प्रद, कल्याण प्रद, निर्वाण का यह सेतु है।। 03

यदि न कर्मासक्त है, रस भोग में ना मूढ़ है।
सर्व संकल्पों का त्यागी, जीव योगारूढ़ है।। 04

देव दुर्लभ, जीव उद्धारक, ये तथ्य विचित्र है।
पार्थ हम स्वयमेव अपने शत्रु हैं वा मित्र हैं।। 05

हार कर मन वृत्तियों से, शत्रुवत है भावना।
जीत कर मन वृत्ति को है मित्रवत जीवात्मा।। 06

शीत, गर्मी, सुख, दु:ख मानापमान प्रशान्त हो।
वह जितेन्द्रिय शांत मन परमात्मा को प्राप्त हो।। 07

मुक्त योगी विज्ञ है, जिसका अचल हर ज्ञान है।
दृष्टि में सर्वत्र सम, रज कांचन पाषाण है।। 08

मित्र, बैरी, बीत रागी, सुहृद या मध्यस्थ है।
बन्धु है द्वेषी है धर्मात्मा या पापानिष्ठ है।। 09

ये सभी जीवात्मा इनमें न कोई नेष्ट है।
यों अचल समभाव धारी व्यक्ति जग में श्रेष्ठ है।। 10

आश संग्रह रहित, योग युंजीत मन में शान्त हो।
ध्यान स्थित ब्रह्म में हो जिस समय एकान्त हो।। 11

शुद्ध, भू और वायु में सम युक्त ही आसन धरे।
कुशा, मृगछाला बिछाकर, वस्त्र स्थापित करे।। 12

रोक हर इन्द्रिय क्रिया, आसन पै तब आसीन हो।
हो के स्थिर चित्त प्राणी, ब्रह्म में लयलीन हो।। 13

काय, सिर, ग्रीवा समुन्नत, कर अचल आविश्ट हो।
हर दिशा से सिमट कर, बस नासिका पर दृष्टि हो।। 14

ब्रह्मचारी विगत भय हो, शांति को धारण करे।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मंत्र उच्चारण करे।। 15

इस तरह अविरल, निरन्तर मत्परायण चित्त हो।
तब परम निर्वाण दायक शांति का स्वामित्व हो।। 16

अति अहारी या निराहारी रहे, हितकर नहीं।
नींद प्रिय या जाग्रही का मन भी होता रत् नहीं।। 17

संयमित आहार निद्रा, संयमित हर कर्म से।
सिद्ध होता योग यह विचलित न हो जो धर्म से।। 18

जिस तरह निर्वात में डिगता न दीप प्रकाश है।
ध्यान योगी चित्त में यों ब्रह्म का आभास है।। 19

इस तरह धर ध्यान जब मेरी शरण हो जायेगा।
आत्मा का ब्रह्म से मानों वरण हो जायेगा।। 20

यों सती की भांति आत्मा ब्रह्म की साधक बने।
फिर न माया मोह उसके चित्त को बाधक बने।। 21

ध्यान का अभ्यास यह अविराम जब हो जायेगा।
तब हृदय में ब्रह्म का उपराम ही हो जायेगा।। 22

पा के यह आनन्द फिर हो जाती वाणी मूक है।
हर घड़ी, पल ब्रह्म दर्शन की न मिटती हूक है।। 23

फिर न दुश्चिन्ता रहे क्या भूत क्या भवितव्य है।
ध्यान का यह योग करना नित्य का कर्तव्य है।। 24

हम सभी भूतों में लय हैं, भूत हमसे युक्त हैं।
स्वयं सारे भूत आत्मालीन हैं, संयुक्त हैं।। 25

मुझमें दर्शित भूत सब, भूतों में मैं ही दृश्य हूँ।
इस तरह जो देखता, उसको न मैं अदृश्य हूँ।। 26

आत्मवत सर्वत्र भूतों में सदा परिवेष्ट है।
सुख दुःख समभाव योगी योगियों में श्रेष्ठ है।। 27

ध्यान धर कर धैर्य धारण कर धनंजय ने कहा।
चित्त चंचलता, चपल, चपला सदृश है हरि ह हा।। 28

एक पल स्थिर नहीं जो देह के प्राचीर में।
किस तरह स्थित करें, तब ब्रह्म के अशरीर में।। 29

अति प्रमंथन भाव, अति स्वच्छन्द गति व्यवहार है।
इसका निग्रह, वायु निग्रह सम, कठिन दुश्वार है।। 30

योग योगीश्वर हँसे, सुन पार्थ की यह प्रतिक्रिया।
मैं कहां कहता सरल है, योग की यह प्रक्रिया।। 31

पर सतत अभ्यास से यह मन स्ववश हो जायेगा।
मन तो क्या अभ्यास से, मुझको भी वश में पायेगा।। 32

कर सतत् अभ्यास भी, मन योग विचलित हो गया।
तब तो माधव भ्रष्ट योगी दीन दुनिया से गया।। 33

सारा जीवन योग कर, दुर्भाग्य वश पथ भ्रष्ट हो।
तब क्या ऐसा ध्यान योगी, पतित होकर नष्ट हो।। 34

इस जगत में पार्थ करता जीव जब जैसी क्रिया।
कर्मफल अनुसार होती उसकी वैसी प्रतिक्रिया।। 35

योग, जप, तप, ध्यान से संचित जब आत्मालोक हो।
हो न सकता नष्ट साधक, लोक या परलोक हो।। 36

मृत्यु पाकर स्वर्ग के उत्तम फलों को प्राप्त हो।
जन्मता उत्तम कुलों में जीव वह निष्पाप हो।। 37

संस्कारित ज्ञान स्थित पूर्व के अभ्यास से।
फिर से योगारूढ़ हो जाता है सहज प्रयास से।। 38

योग में संसिद्ध होकर निष्कलुश, निष्पाप हो।
आवागमन से मुक्त हो, कैवल्य पद को प्राप्त हो।। 39

ज्ञान, तप व सकर्म पथ से, योग का पथ श्रेष्ठ है।
अस्तु अर्जुन योग कर, योगी ही सबसे ज्येष्ठ है।। 40

मुझमें श्रद्धा भक्ति, बस मैं हूँ न कुछ अन्यान्य है।
इस तरह का भक्त मुझको, श्रेष्ठ योगी मान्य है।। 41

दोहा- अर्जुन के संशय मिटे, थे सब देव निहाल।
सिया राम के ध्यानरत हुये अंजनी लाल।।

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद सांख्य कर्म योग
षष्ठम अध्याय समाप्त।